12

भारत में प्रशासन पर नियन्त्रण एवं जवाबदेयिता

[CONTROL AND ACCOUNTABILITY OF ADMINISTRATION IN INDIA]

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सभी देशों में लोक प्रशासन का अविरल विस्तार हो रहा है; शासन के कार्यों में नित नयी वृद्धि एक अविरल प्रक्रिया का रूप धारण कर चुकी है। भारत में भी प्रशासन की शक्तियों का निरन्तर विकास हो रहा है। द्वितीय महायुद्ध तथा उसके पश्चात् उत्पन्न समस्याओं, देशी रियासतों के विलयन, नवीन संविधान लागू होने एवं उसके फलस्वरूप शासन द्वारा नवीन क्षेत्रों में अनेक कार्यों एवं पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ और देश की उत्तरी सीमाओं पर उत्पन्न नए संकटों ने शासन की शक्तियों के प्रसार में योग दिया है; फलस्वरूप लोक प्रशासन अतुलित शक्तियों से युक्त है। ऐसी स्थिति में प्रशासन की इन शक्तियों को नियन्त्रित करने की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। **प्रो. व्हाइट** के शब्दों में, लोकतान्त्रिक समाज में शक्ति पर नियन्त्रण आवश्यक है। शक्ति जितनी अधिक है, नियन्त्रण की भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है।[1]

वस्तुतः प्रशासनिक नियन्त्रण अपने आप में सम्बन्धों की समस्या उत्पन्न करता है जिससे अन्त में उत्तरदायित्व का प्रश्न उभरता है। प्रशासक को उसके उत्तरदायित्व का प्रज्ञान अनेक प्रकार के ऐसे नियमों से कराया जाता है जो उस पर लागू होते हैं। आधुनिक लोकतान्त्रिक शासन में यह नियन्त्रण अनेक स्थानों या व्यक्तियों से उद्भूत होते हैं, यथा: (अ) संसद में, (ब) मतदाताओं अथवा लोक से, (स) प्रशासकीय मालिकों से, (द) व्यावसायिक संस्थाओं से, और (य) न्यायालयों से। दूसरे शब्दों में प्रशासन का उत्तरदायित्व राजनीतिक शासन सम्बन्धी, व्यावसायिक और न्यायिक होता है।[2]

लोक प्रशासन पर नियन्त्रण : प्रकार

(CONTROL OVER PUBLIC ADMINISTRATION : TYPES)

लोक प्रशासन पर नियन्त्रण की समस्या का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. लोक प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण, 2. लोक प्रशासन पर कार्यपालिका का नियन्त्रण, 3. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण।

1. लोक प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण (Legislative Control over Public Administration)

आधुनिक संसदीय शासन व्यवस्था में अब यह स्वीकार किया जाता है कि संसद का एक महत्वपूर्ण कार्य प्रशासन पर नियन्त्रण रखना है। इससे अभिप्राय है कि सरकार जिस दिशा में कदम बढ़ाती है अथवा उसने कदम बढ़ाए हैं उस पर संसद को अपनी सहमति व्यक्त करने का अधिकार है।[3]

चूंकि प्रशासन मन्त्रि-परिषद् के साथ निकट का सम्पर्क रखकर कार्य करता है और वास्तव में संसद द्वारा अनुमोदित सरकार की नीतियों की क्रियान्विति के लिए यह मन्त्रि-परिषद् का साधन है, अतः यह संसद के प्रति मन्त्रि-परिषद् के माध्यम से उत्तरदायी है। प्रशासन की किसी असफलता, अकार्यकुशलता, विलम्ब,

1 एल. डी. व्हाइट, **इण्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**, चतुर्थ संस्करण, पृ. 510.

2 डॉ. महादेव प्रसाद शर्मा, **लोक प्रशासन : सिद्धान्त एवं व्यवहार**, 1971, पृ. 623.

3 श्यामलाल शकधर, **भारतीय संसद**, 1978, पृ. 172.

त्रुटि अथवा अनियमितता के बारे में लगाए गए आरोप को अन्ततोगत्वा मन्त्री अथवा मन्त्रि-परिषदों द्वारा अपने ऊपर लेना पड़ता है, जिसका दण्ड साधारण भी हो सकता है—जैसे अप्रसन्नता व्यक्त करना अथवा कठोर भी हो सकता है जिसमें मन्त्रि-परिषद् को हटाया जा सकता है। अत: प्रशासन पर सावधान, सचेत, जागरूक, ईमानदार और कार्यकुशल रहने का भारी दायित्व तथा मन्त्रि-परिषद् पर प्रशासन की प्रत्येक गतिविधि की निगरानी रखने तथा संसद के प्रति सत्यनिष्ठा रखने का भारी दायित्व होता है क्योंकि घटनाएं घटने के पश्चात् संसद द्वारा इन दोनों के कार्यों को आंका जाता है।

संसदीय नियन्त्रण के अभाव में प्रशासकीय क्रियाओं में उचित समन्वयन नहीं रह पाता। एक ही कार्य के विभिन्न पहलुओं से जब अनेक विभाग सम्बन्धित हो जाते हैं तो नौकरशाही का विकृत रूप सामने आता है जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता को कठिनाइयों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अत: प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण अपरिहार्य है। संसद के द्वारा यह नियन्त्रण प्राय: मुख्य कार्यपालिका के माध्यम से रखा जाता है। इसकी प्रकृति राजनीतिक होती है। इस कार्य में संसद की विभिन्न समितियां योगदान करती हैं।

प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण : उपकरण—संसद और लोक प्रशासन के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि नागरिक जीवन में ये दोनों संस्थाएं महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। जनता की सम्प्रभुता प्राप्त प्रतिनिधि संस्था के रूप में संसद का यह उत्तरदायित्व माना जाता है कि लोक प्रशासन को जनहित की दिशा में संचालित करे। अपने इस उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए संसद को निषेधात्मक एवं विधेयात्मक दोनों ही प्रकार के कदम उठाने होते हैं। विधेयात्मक रूप में संसद नीति निर्धारित कर कानून बनाकर तथा अन्य प्रकार की प्रेरणाएं प्रदान कर लोक सेवकों को उनकी शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोकती है। निषेधात्मक ढंग से संसदीय नियन्त्रण के उपकरण हैं—प्रश्न पूछना, प्रस्ताव पेश करना, स्थगन प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव, बजट तथा संसदीय समितियां।

प्रशासन पर नियन्त्रण रखने के लिए संसद मुख्य रूप से जो साधन अपनाती है, उनकी संक्षिप्त चर्चा निम्नवत् है :

(1) राष्ट्रपति का अभिभाषण—संसद के नए अधिवेशन के आरम्भ में राष्ट्रपति अपना अभिभाषण देते हैं जिसमें कई बार लोक सेवाओं के कार्यों एवं उपलब्धियों का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख कर दिया जाता है। राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद करते समय प्रशासनिक अधिकारियों के क्रियाकलापों पर अनेक वक्तव्य प्रदान किए जाते हैं। इस प्रकार वाद-विवाद का यह अवसर लोक सेवकों की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने का सफल साधन प्रतीत होता है।

(2) प्रश्न-काल—प्रश्न पूछना संसदीय नियन्त्रण का एक अत्यन्त प्रभावशाली साधन है। संसद के सदस्य उचित समय की सूचना देकर मन्त्रियों से प्रश्न पूछ सकते हैं। जब संसद का सत्र चल रहा हो तो प्रतिदिन पहला घण्टा प्रश्नों के लिए निश्चित रहता है। भारतीय संसद में मौखिक प्रश्नों का औसत लगभग तीस आता है। मुख्य प्रश्नों से सम्बन्धित अनुपूरक प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। कभी-कभी तो मन्त्रियों पर प्रश्नों की बौछार ही कर दी जाती है। सम्बन्धित मन्त्रियों को प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। प्रश्न अनेक उद्देश्य से पूछे जा सकते हैं : शिकायत व्यक्त करना, विशिष्ट मामलों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना या उनके बारे में सरकार की राय मालूम करना, किसी आरोपित अनियमितता के बारे में सम्बन्धित विभाग की आलोचना करना, आदि। प्रश्न प्रशासकों को सावधान या सतर्क रखते हैं। अनेक प्रश्न नौकरशाही को जवाबदेय बनाने के लिए पूछे जाते हैं। प्रश्न-काल एक ऐसा अवसर प्रदान करता है जिसके द्वारा प्रशासकीय नीति अथवा क्रिया के किसी भी भाग की ओर जन-सामान्य का ध्यान आकर्षित करवाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, 1956 में जीवन बीमा निगम से सम्बन्धित एक प्रश्न पूछा गया जिसके फलस्वरूप इतना विवाद बढ़ा कि तत्कालीन वित्त मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ा था। डॉ. सुभाष काश्यप के शब्दों में, "प्रश्नकाल का महत्व कुछ ऐसे उदाहरणों से पर्याप्त रूप से सिद्ध हो जाता है जबकि सतर्क सदस्यों द्वारा गम्भीरता से प्रश्नों पर अनुवर्ती कार्यवाही करते रहने के कारण कानून के उल्लंघन, सरकार की नीतियों के उल्लंघन या सार्वजनिक धन के दुरुपयोग के मामलों में सरकार को जांच करनी पड़ी। उनमें से कुछ उदाहरण, जिनमें जांच कराई गई, इस प्रकार हैं : जीप काण्ड (1951), मूंदड़ा काण्ड (1957), आयात लाइसेंस काण्ड (1974), और हाल ही में इस्पात के

सौदों की जांच का मामला और वनस्पति घी में गाय की चर्बी के प्रयोग का मामला...।''[1] ह्यूगेटस्केल ने इस सम्बन्ध में कहा है कि ''यदि कोई ऐसी मुख्य चीज है जो लोक सेवकों को अत्यधिक सतर्क, भयभीत तथा सावधान रखती है तो वह केवल संसदीय प्रश्नों का भय ही है।'' भारतीय लोकसभा सचिवालय के भूतपूर्व सचिव श्री अवतार सिंह रिखी का कहना है कि ''प्रश्नों के माध्यम से मन्त्री अपनी नीति एवं प्रशासन के प्रति लोकप्रिय प्रतिक्रिया को जान सकते हैं। संसद में प्रश्न-काल लोक कर्मचारियों को चौकन्ना रखता है। यह उसे सजग रहने के लिए बाध्य करता है और उसके कार्यों में सावधानी रखने को प्रेरित करता है तथा सामान्य नौकरशाही से सम्बन्धित कुछ अन्यायपूर्ण कार्यों पर रोक लगाता है।''[2] ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री लॉर्ड एटली का भी इसी से मिलता-जुलता मत है, ''....मन्त्री से पूछे गए प्रश्नों तथा इससे अधिक सदन में खुले रूप से पूछे गए प्रश्नों के फलस्वरूप सम्पूर्ण लोकसेवा को सजग रहना पड़ता है।''

(3) वाद-विवाद तथा बहस—आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्यों में प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण की एक अन्य प्रभावपूर्ण युक्ति है वाद-विवाद तथा बहस। इस साधन के द्वारा संसद के सदस्य सरकार के द्वारा किए गए कार्यों का सूक्ष्म परीक्षण करते हैं। प्रशासकों के व्यवहार पर बहस एवं विचार-विमर्श के लिए मुख्य रूप से सांसदों को तीन प्रकार से अवसर प्राप्त होते हैं—**प्रथम**, जब कोई नया विधेयक प्रस्तुत किया जाता है तो इस पर होने वाली बहस के समय विभिन्न सदस्यों द्वारा प्रशासन की पुनरीक्षा की जा सकती है। सरकारी नीति एवं मन्त्रियों के विभाग की उपलब्धियों को वाद-विवाद का विषय बनाया जा सकता है। प्रशासन की आलोचना, समालोचना एवं प्रशंसा की जा सकती है। **द्वितीय**, भारतीय संसद को लोक प्रशासन की पूरी जांच करने का अवसर आधा घण्टे के विचार-विमर्श में भी प्राप्त होता है। ऐसा प्रावधान है कि यदि प्रश्न काल में कोई सदस्य सरकार के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हो पाया है तो वह प्रश्न काल के तुरन्त बाद ही अध्यक्ष से आधा घण्टे के विचार-विमर्श की अनुमति मांग सकता है। **तृतीय**, अल्पकालीन विचार-विमर्श में किसी अत्यावश्यक विषय पर विचार करते हुए संसद सदस्यों द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों को भी वाद-विवाद का विषय बनाया जा सकता है। इस प्रकार का विचार-विमर्श अध्यक्ष की अनुमति से होता है।

(4) बजट पर बहस—बजट पर होने वाले वाद-विवाद प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपकरण हैं। संसद में जैसे ही बजट प्रस्तुत किया जाता है उस पर सामान्य चर्चा आरम्भ हो जाती है। बजट पर बहस करने का दूसरा अवसर सदस्यों को तब मिलता है, जब विभिन्न विभागों से सम्बन्धित अनुदानों की मांगों पर विचार एवं मतदान होता है। इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाते हुए संसद सदस्य विभागों की प्रशासकीय क्रियाओं की सूक्ष्म जांच और परीक्षण करते हैं। इसके बाद सम्पूर्ण शासन पर चर्चा की जाती है, जो प्रायः हमेशा ही अति तीक्ष्ण होती है।

(5) स्थगन प्रस्ताव—सार्वजनिक महत्व के किन्हीं भी मामलों पर स्थगन प्रस्ताव सदस्यों को एक ऐसा अवसर प्रदान करता है जिसके द्वारा वे किसी भी प्रशासनिक विभाग के कार्य संचालन पर विवाद कर सकते हैं।[3] इस प्रस्ताव के माध्यम से संसद सदस्यों द्वारा संसद के निश्चित कार्यक्रम को रोककर किसी अन्य महत्वपूर्ण विषय पर बहस की जा सकती है। अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करने के बाद प्रस्तावित विषय पर विचार-विमर्श प्रारम्भ हो जाता है और सदन की निर्धारित कार्यवाही कुछ समय के लिए स्थगित कर दी जाती है। किसी विभाग के अधिकारियों के अत्याचार एवं ज्यादतियों के विरुद्ध भी इस प्रकार के प्रस्ताव रखे जा सकते हैं। ऐसे प्रस्ताव स्वीकृत न होने पर भी सम्बन्धित विभाग की बदनामी तो हो ही जाती है।

(6) अविश्वास प्रस्ताव—इसे 'निन्दा प्रस्ताव' भी कहते हैं। संसदीय प्रणाली वाले देशों में अविश्वास प्रस्ताव द्वारा सरकार को पदच्युत किया जा सकता है। संसद के गहन असन्तोष एवं विरोध की स्थिति में कार्यपालिका अधिक समय तक अपने पद पर नहीं रह सकती। इसी कारण संसदीय असन्तोष को फलीभूत न होने देने के लिए मन्त्रिमण्डल संसद के बहुमत को अपने पक्ष में रखता है तथा प्रशासकों के कार्यों की

1 सुभाष काश्यप, **हमारी संसद**, 1991, पृ. 81.
2 ए. एस. रिखी, **क्वैश्चन ऑवर इन पार्लियामेण्ट सिविल एफेयर्स** (कानपुर), मार्च 1957, पृ. 39-40.
3 रूल्स ऑफ प्रोसीजर एण्ड कण्डक्ट ऑफ बिजनेस इन लोकसभा।

देख-रेख करके उनको असन्तुष्ट होने का अवसर नहीं देता। संसद में अविश्वास प्रस्तावों पर बहस के समय विरोधी दल के सदस्य तथा सत्ताधारी दल के असन्तुष्ट सदस्य प्रशासन की दुर्बलताओं को उजागर करते हैं।

(7) **संसदीय समितियां**—प्रशासन पर नियन्त्रण रखने में संसदीय समितियों का भी हाथ रहता है। वे प्रशासन के कार्य की जांच-पड़ताल करती हैं। वे लोक प्रशासन की गतिविधियों का विस्तृत अध्ययन करने के बाद यह बताती है कि कहां अनियमितता बरती जा रही है, कौन अधिकारी अथवा अभिकरण अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है, किसके द्वारा जन-विरोधी कार्य किए जा रहे हैं तथा कहां धन का अपव्यय किया जा रहा है, इत्यादि।

भारतीय संसद में प्रशासन पर नियन्त्रण रखने वाली मुख्य तीन समितियां हैं—(i) लोक लेखा समिति, (ii) प्राक्कलन समिति, और (iii) आश्वासन समिति। प्रथम दो संसद की वित्तीय समितियां हैं और वे प्रशासन पर विस्तृत एवं ठोस नियन्त्रण रखने में महत्वपूर्ण सहयोग देती हैं। लोक लेखा समिति विनियोजन लेखों की सूक्ष्म जांच कर सकती है और उनमें पायी जाने वाली अनियमितताओं को प्रकाश में लाती है ताकि भविष्य में उसकी रोकथाम की जा सके। प्राक्कलन समिति विभिन्न विभागों के व्ययों का पुनरावलोकन करने के पश्चात् उसमें मितव्ययिता लाने का सुझाव देती है। आश्वासन समिति उन आश्वासनों, वायदों, आदि की छानबीन करती है जो मन्त्रियों द्वारा समय-समय पर सदन में दिए गए हैं। जांच-पड़ताल के बाद यह समिति निम्न बातों पर अपना प्रतिवेदन देती है कि, (क) उक्त आश्वासन, वायदे आदि किस सीमा तक निभाए गए, और (ख) यदि वे कार्य किए गए हैं, तो क्या परिपालन कार्य आवश्यक न्यूनतम समय के भीतर हुआ है? इस समिति के होने के कारण मन्त्रीगण अब न केवल वायदे करते समय सावधान रहते हैं, बल्कि इस बात की पूरी कोशिश करते हैं कि उन वायदों को पूरा करने के लिए यथासम्भव शीघ्र कार्यवाही की जाए। श्री एम. एन. कौल के मतानुसार, "इस समिति ने केवल प्रशासकीय कार्य-कुशलता की देखभाल रखने में ही सहायता नहीं की है, अपितु पुरानी पद्धति में निहित अनेक दोषों को दूर करने में भी सहायता पहुंचायी है। मन्त्रीगण अब वायदे करते समय सावधान रहते हैं और वायदों के सम्बन्ध में कार्यवाही करने के बारे में काफी सक्रिय रहते हैं।"[1]

(8) **लेखा परीक्षण**—लेखा परीक्षण व्यय पर नियन्त्रण बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण साधन है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत लेखा-परीक्षण का कार्य नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को सौंपा गया है। लेखा परीक्षण विभाग कार्यपालिका के अंकुश से बाहर एक स्वतन्त्र निकाय है। नियन्त्रक महालेखा परीक्षक का काम यह देखना है कि प्रशासन के विभिन्न विभाग स्वीकृत धनराशि का व्यय संसद के आदेशानुसार ही कर रहे हैं या नहीं? वह प्रत्येक वर्ष अपना प्रतिवेदन संसद के सम्मुख रखता है और इस प्रकार प्रशासन की धन सम्बन्धी त्रुटियां प्रकाश में लाता है। इसलिए नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को लोक लेखा समिति का 'मित्र, तत्वज्ञानी तथा मार्गदर्शक' कहा गया है।

भारत में संसदीय नियन्त्रण की समीक्षा (An Estimate of Parliamentary Control over Administration in India)—भारतीय संसद, विशेषतः इसकी लोकसभा, प्रशासन पर नियन्त्रण रखने का कार्य बड़ी सफलता से कर रही है। कुछ अंशों में इसकी सराहना विदेशी विशेषज्ञों ने भी की है। श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा भारतीय प्रशासन में सुधार के सम्बन्ध में बुलाए गए अमरीकी विशेषज्ञ प्रो. एपिलबी ने इस समस्या का गम्भीर अध्ययन करने के बाद लिखा था, "वाद-विवाद और प्रश्नों की विधियों की सहायता से संसद सदस्य प्रशासन पर कड़ी देखरेख रखते हैं, इसको सदैव जागरूक और सावधान बनाए रखते हैं, वे अपनी तीव्र एवं कटु आलोचनाओं से सरकारी विभागों की कार्यपद्धति में निरन्तर संशोधन और सुधार करते रहते हैं।"[2] केन्द्रीय सरकार के एक भूतपूर्व मन्त्री एन. बी. गाडगिल ने लिखा है कि "प्रश्न एवं बहस द्वारा प्रशासन के कार्य की लगातार समीक्षा की जाती है। प्रशासन की छोटी-से-छोटी बात भी भीषण परिणाम उत्पन्न कर सकती है क्योंकि विरोधी दल अपना पूरा समय कार्यपालिका की त्रुटियों का पता लगाने में व्यतीत करते

1 महेश्वरी नाथ कौल और श्यामलाल शकधर, **संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार।**

2 पॉल एच. एपिलबी, **ए रिएग्जामिनेशन ऑफ इण्डियाज एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम** (रिपोर्ट), पृ. 41.

हैं।"[1] पिछले दशक में संसदीय दबाव के कारण ही बैंक घोटाले में दोषी पाए गए मन्त्री श्री शंकरानन्द एवं श्री रामेश्वर ठाकुर तथा चीनी आयात मामले में दोषी पाए गए मन्त्री कल्पनाथ राय को त्याग पत्र देना पड़ा।

यद्यपि वह सत्य है कि उपरोक्त विधि से संसद प्रशासन पर नियन्त्रण रखने का प्रयास करती है, तथापि वास्तविकता यह है कि प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण उतना प्रभावशाली नहीं है जितना होना चाहिए। प्रशासन को प्रभावशाली नियन्त्रण में रखने के लिए संसद के पास न तो पर्याप्त समय रहता है और न ही दक्ष कर्मचारी। संसदीय नियन्त्रण की प्रभावशीलता इसलिए भी कम हो जाती है कि सरकार संसद में दलीय बहुमत के कारण सामान्यत: सुरक्षित रहती है और विरोधी दलों की आसानी से उपेक्षा कर सकती है।

संसद किस सीमा तक प्रशासकों पर नियन्त्रण रखे और किस सीमा तक उन्हें विवेकीय शक्तियां प्रयुक्त करने की छूट दे—यह एक बहुत ही नाजुक समस्या है। अनेक बार संसद का हस्तक्षेप इतना अधिक और व्यापक हो जाता है कि वह नियन्त्रक की परिधियों में सीमित न रहकर हस्तक्षेप बन जाता है और इस प्रकार लोक प्रशासकों के कार्यों पर अनेक प्रतिबन्ध लग जाते हैं। भारत में संसदीय नियन्त्रण की सफलता के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं, जैसे **प्रथम**, संसद के सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते जिसके फलस्वरूप वे प्रशासनिक जटिलताओं की सूक्ष्मता को आसानी से नहीं समझ पाते। इससे वे प्रशासन की रचनात्मक आलोचना करने में असमर्थ रहते हैं। **द्वितीय**, संसद द्वारा किया गया कार्यों का विस्तृत निर्धारण गलत सवित हो सकता है क्योंकि वह उन परिस्थितियों से प्रत्यक्षत: वाकिफ नहीं होती जिनमें कार्य किया जाना है। **तृतीय**, संसद सदस्य जब प्रशासन की आलोचना करते हैं तो उनका मुख्य लक्ष्य प्राय: प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना या उसके दोषों को दूर करना नहीं होता अपितु उनकी आलोचनाएं प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए होती हैं, साथ ही ये आलोचनाएं दलीय भावनाओं पर आधारित होती हैं। **चतुर्थ**, भारतीय सन्दर्भ में प्रशासन पर संसदीय नियन्त्रण मन्त्रियों को उनके उत्तरदायित्व से मुक्ति का एक बहाना दे देता है। जब कभी किसी प्रशासनिक एवं अन्य प्रकार की त्रुटियों के लिए मन्त्रियों को आलोचना का विषय बनाया जाता है तो वे इसका भार स्वयं के ऊपर न लेकर प्रशासनिक अधिकारियों पर डाल देते हैं। **पंचम**, संसदीय नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक समस्या यह भी उठती है कि संसद द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों की आलोचना एकपक्षीय होती है। सांसद प्रशासकों के कार्यों की कड़ी से कड़ी आलोचना कर सकते हैं, किन्तु सम्बन्धित अधिकारी को अपने पक्ष में तर्क देने का अवसर प्राप्त नहीं होता। इससे अधिकारीगण भयभीत रहते हैं, लोकहित की भावना से ईमानदारीपूर्ण व्यवहार गौण बन जाता है और प्रशासनिक अधिकारियों का ध्यान संसद के प्रभावशाली सदस्यों को प्रसन्न करना बन जाता है। इससे अन्ततोगत्वा प्रशासन की कार्यकुशलता, निष्पक्षता एवं मनोबल पर प्रतिकूल असर होता है।[2]

भारत में जहां संसदीय परम्पराएं और प्रक्रियाएं अभी संक्रमण की अवस्था से गुजर रही हैं, यह चुनौतीपूर्ण दायित्व है कि संसदीय नियन्त्रण अपनी गरिमामय स्थिति को प्राप्त कर सके। संसद से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मन्त्री के माध्यम से प्रशासन की खबर ले और प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन में उतना ही हस्तक्षेप करे जितना उसे नियन्त्रित करने के लिए अपेक्षित है। भारत में ब्रिटेन की भांति कुछ ऐसी परम्पराएं डाली जाएं जिनके अनुसार मन्त्रीगण एक ढाल का कार्य करें तथा अपने विभाग के अधिकारियों को संसद की आलोचना के प्रहारों से बचाएं। उन्हें ऐसा हर सम्भव प्रयास करना चाहिए, जिसके आधार पर लोक प्रशासकों के अनाम व्यवहार, निष्पक्षतापूर्ण आचरण तथा स्वतन्त्र एवं ईमानदारीपूर्ण निर्णयों की रक्षा की जा सके।

निष्कर्षत: इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसद के सदस्य संसद में सर्वथा स्वतन्त्र और उन्मुक्त होकर बहस करते हैं और वे इससे प्रशासन के सुचारु संचालन पर बड़ा अच्छा प्रभाव डालते हैं, किन्तु कभी-कभी इसका दुरुपयोग करते हुए वे प्रशासकों के उत्साह और कार्य करने की भावना को कुचल भी सकते हैं। सरकारी कर्मचारियों के अपने अधिकारों के निरंकुश प्रयोग, दुरुपयोग पर अंकुश लगाना तथा इनके लोकहित विरोधी कार्यों को रोकना विधायकों तथा सांसदों का आवश्यक कर्तव्य है, किन्तु यदि वे सुनी-सुनायी अफवाहों या अप्रामाणिक खबरों के आधार पर सरकारी कर्मचारियों तथा प्रशासन की निराधार आलोचना करते हैं तो इसके

1 एन. बी. गाडगिल, **अकाउण्टेबिलिटी ऑफ़ एडमिनिस्ट्रेशन, इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन।**

2 प्रभुदत्त शर्मा, "**पार्लियामेण्ट्री कण्ट्रोल ओवर एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, दि इण्डियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस**", अप्रैल-जून, 1976, पृ. 105-107.

अनेक दुष्परिणाम भी हो सकते हैं। इस प्रकार का बेबुनियाद छिद्रान्वेषण सरकारी कर्मचारियों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है कि वे किसी भी कार्य में पहल न करें और ऊपर के अधिकारियों से आदेश पाए बिना काम न करें। यह स्थिति प्रशासन के लिए बड़ी घातक है, क्योंकि संसदीय लोकतन्त्र विशेषज्ञ प्रशासक और अकुशल राजनीतिज्ञ के सहयोग से चलता है। ये दोनों शासन रूपी गाड़ी के पहिए हैं, किन्तु जब प्रशासक आलोचना के भय से अपना कार्य करना बन्द कर देता है तो प्रशासन की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। अतः सांसदों को निराधार छिद्रान्वेषण की प्रकृति से बचे रहना चाहिए।

2. लोक प्रशासन पर कार्यपालिका का नियन्त्रण (Control of Executive over Public Administration)

सभी देशों में लोक प्रशासन पर कार्यपालिका का किसी न किसी भांति अंकुश अवश्य रहता है। उत्तरदायी सरकार में तो प्रशासन पर कार्यपालिका का समुचित नियन्त्रण अपेक्षित है अन्यथा 'नौकरशाही के राज' की कहावत चरितार्थ होने लगती है। वैसे उत्तरदायी (लोकतन्त्रात्मक) शासनों में प्रशासन की स्थिति कार्यपालिका की तुलना में बेहतर होती है जिससे उस पर नियन्त्रण स्थापित करना एक कठिन कार्य हो जाता है। प्रशासनिक कर्मचारी कार्यपालिका की तुलना में स्थायी अवधि के लिए नियुक्त किए जाते हैं, अतः वे कभी-कभी कार्यपालिका के निर्देशों की परवाह नहीं करते। फिर, लोक सेवा परम्पराप्रिय और रूढ़िवादी मनोवृत्ति की होती है और वह कार्यपालिका द्वारा निर्धारित नवीन योजनाओं के प्रति वांछित निष्ठा का प्रदर्शन भी नहीं करती है। अमरीका में 'न्यू डील' कार्यक्रमों के शीघ्र क्रियान्वयन के मार्ग में लोक सेवा एक बाधा मानी गयी थी। ब्रिटेन में भी लोक सेवा ने मजदूर सरकार के समाजवादी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में प्रतिरोध उत्पन्न किया था।

लोक प्रशासन पर कार्यपालिका द्वारा नियन्त्रण के प्रमुख उपकरण निम्नलिखित हैं :

(1) शासन की नीतियों का निर्धारण मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही होता है,

(2) प्रशासकों की नियुक्ति, स्थानान्तरण तथा निष्कासन का अधिकार कार्यपालिका में निहित है,

(3) बजट कार्यपालिका बनाती है,

(4) लोकमत से अपील,

(5) लोक सेवा संहिता तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही।

3. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control over Public Administration)

प्रशासन पर न्यायपालिका का नियन्त्रण उतना ही आवश्यक है जितना कि प्रशासन पर विधायिका का नियन्त्रण। न्यायालय जनता के अधिकारों तथा स्वतन्त्रता के रक्षक हैं। इनके द्वारा किए गए नियन्त्रण को 'कानूनी प्रतिकार' कहा जाता है। वास्तव में, प्रशासनिक अधिकारियों का न्यायालयों के प्रति जो उत्तरदायित्व है, वही दूसरे रूप में, 'कानूनी प्रतिकार' है। जब भी सरकारी अधिकारी अनाचार करता है या अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, कोई भी नागरिक न्यायालयों में उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है और त्राण पा सकता है।

लोक प्रशासकों की स्वेच्छाचारिता पर न्यायालय अपना अंकुश और नियन्त्रण कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार कुछ निश्चित सीमाओं, परिस्थितियों तथा शर्तों में ही रख सकते हैं। इसकी एक बड़ी शर्त यह है कि न्यायालय अपनी इच्छा से प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते, वे सत्ता के दुरुपयोग से नागरिकों को तब तक नहीं बचा सकते हैं, जब तक कोई व्यक्ति, समूह या संस्था न्यायालय में आवेदन-पत्र देकर उससे इस आधार पर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना न करे कि सरकारी अधिकारियों के किसी कार्य से उसके अधिकारों का अतिक्रमण या हनन हुआ है अथवा ऐसा होने की सम्भावना है।

न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की परिस्थितियां—न्यायालय केवल निम्नलिखित पांच परिस्थितियों में प्रशासन द्वारा की जाने वाली कार्यवाहियों में हस्तक्षेप कर सकते हैं :

(1) जब प्रशासनिक अधिकारी अधिकार क्षेत्र न होने की दशा में काम करें,

(2) जब प्रशासक अपने विवेक का दुरुपयोग करें,

(3) जब प्रशासनिक अधिकारी अपने कार्य में कोई कानूनी गलती करें,

(4) जब प्रशासनिक अधिकारी अपने कार्य में किन्हीं तथ्यों का पता लगाने में कोई त्रुटि करें,

(5) जब प्रशासनिक अधिकारी अपने कार्य में कोई प्रक्रिया सम्बन्धी गलती करें।

(1) **अधिकार क्षेत्र का अभाव** (Lack of Jurisdiction)—इसका अभिप्राय प्रशासकों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र या भौगोलिक सीमा के बाहर कोई कार्य करना है, यदि इससे किसी नागरिक के अधिकार को हानि पहुंचती है तो वह इसके परित्राण के लिए न्यायालय की शरण लेता है। यदि न्यायालय में उपस्थित किए जाने वाले प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाए कि यह कार्य प्रशासनिक अधिकारी के अधिकार क्षेत्र में नहीं था तो वह इस कार्य को अधिकारातीत (ultra vires) होने अर्थात् अधिकारी के अधिकार क्षेत्र से बाहर होने के कारण अवैध घोषित करता है। इस प्रकार न्यायालयों को ऐसी परिस्थितियों में प्रशासन के कार्यों की समीक्षा करने का अधिकार होता है और इसे 'न्यायिक समीक्षा का सिद्धान्त'' (Doctrine of Judicial Review) कहा जाता है। यह सिद्धान्त उन देशों में प्रचलित है, जहां संविधान को सर्वोच्च माना जाता है। भारत और अमरीका में संविधान देश का सर्वोच्च कानून माना जाता है और इन देशों में सरकारी अधिकारियों के सभी कार्य संविधान के अनुकूल होने चाहिए।

(2) **विवेक का अनुचित प्रयोग** (Abuse of Discretion)—यदि कोई प्रशासनिक अधिकारी अपनी सत्ता का प्रयोग बदले की भावना से अपने विरोधी को हानि पहुंचाने के लिए करता है तो हानि उठाने वाला व्यक्ति न्यायालय में जाकर सरकारी अधिकारी के आदेश को रद्द करा सकता है।

(3) **विधि-सम्बन्धी त्रुटि** (Error of Law)—जब सरकारी अधिकारी किसी कानून को गलत रूप में समझते हुए नागरिकों पर ऐसे दायित्व और बन्धन लगाते हैं, जो वस्तुतः कानून की दृष्टि से सही नहीं हैं तो न्यायालय सरकारी अधिकारियों के कार्य में हस्तक्षेप करके ऐसी गलतियां दूर करते हुए नागरिक के अधिकारों की रक्षा करते हैं।

(4) **तथ्य का पता लगाने में त्रुटि** (Error in the Finding of Fact)—यदि कोई सरकारी अधिकारी अपने किसी प्रशासनिक कार्य में तथ्य को अच्छी तरह से पता लगाए बिना किसी नागरिक को उसे हानि पहुंचाने वाला कोई आदेश देता है तो नागरिक अपने अधिकार की रक्षा के लिए न्यायालय की सहायता ले सकता है।

(5) **प्रक्रिया सम्बन्धी त्रुटि** (Error of Procedure)—न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे इस बात को भी देखें कि सरकारी अधिकारी शासन करते हुए समुचित प्रक्रिया के अनुसार सारा कार्य करें। यदि वे कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्य नहीं करते हैं और किसी व्यक्ति को सरकारी अधिकारी के ऐसे कार्य से हानि पहुंचती है तो न्यायालय उसकी रक्षा करते हैं।

न्यायिक समीक्षा की रीतियां (Methods of Judicial Review)

न्यायपालिका द्वारा प्रशासन पर नियन्त्रण रखने के लिए विभिन्न लेख जारी किए जाते हैं। भारतीय संविधान की धारा 32(2) के अनुसार उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह नागरिकों के अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए आवश्यक आदेश, निर्देश तथा लेख निकाल सके। अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को यह सभी शक्तियां सौंपता है।

इन असाधारण उपचारों का इतिहास काफी लम्बा है तथा ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास में देखा जा सकता है। वहां इनको न्याय के मूल स्रोत राजा के नाम पर प्रसारित विशेषाधिकार लेख कहा जाता है। इन उपचारों को असाधारण इसलिए कहा जाता है, क्योंकि बन्दी प्रत्यक्षीकरण को छोड़कर अन्य सभी लेख न्यायालय द्वारा किसी के अधिकार के रूप में नहीं वरन् उसकी स्वेच्छा से प्रसारित किए जाते हैं और केवल वहीं प्रसारित किए जाते हैं, जहां कि अन्य साधन अपर्याप्त हों। प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण के इन विभिन्न लेखों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है :

(1) **बन्दी प्रत्यक्षीकरण** (The Writ of a Habeas Corpus)—बन्दी प्रत्यक्षीकरण से तात्पर्य है कि कोई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट किसी भी अधिकारी को यह आज्ञा दे सकती है कि कैदी को कानून के विरुद्ध जेल में न रखा जाए और उसको समीपस्थ न्यायाधीश के समक्ष पेश किया जाए।

इस लेख का मुख्य लक्ष्य गैर-कानूनी रूप से बन्दी बनाए गए व्यक्ति को स्वतन्त्र करना होता है।

(2) **परमादेश** (The Writ of Mandamus)—परमादेश लेख द्वारा न्यायालय सार्वजनिक निकाय, सार्वजनिक कर्मचारी, निगम या संस्था को आदेश दे सकते हैं कि वह अपने कर्तव्य का कानून के अनुसार पालन करें।

इस लेख के द्वारा न्यायालय सरकारी अधिकारी को किसी न किसी प्रकार से कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है।

(3) **प्रतिषेध** (The Writ of Prohibition)—प्रतिषेध लेख उच्च न्यायालय द्वारा छोटी अदालतों को उस समय जारी किया जाता है जबकि वे अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जा रही हों।

यह लेख अधीनस्थ न्यायालयों को विवादपूर्ण विषयों पर विचार करने से रोकने के लिए प्रसारित किया जाता है।

(4) **उत्प्रेषण** (The Writ of Cretiorari)—उत्प्रेषण लेख द्वारा बड़ा न्यायालय छोटे न्यायालय से सभी प्रकार के रिकॉर्ड इस बात की जांच-पड़ताल के लिए अपने पास मंगवा सकता है कि अधीन न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर तो नहीं गया है।

इस लेख को प्रायः न्यायिक कार्य के विरुद्ध ही प्रसारित किया जाता है। इस आधार पर छोटी अदालत का निर्णय रुक जाता है अथवा खण्डित हो जाता है। यह लेख परमादेश और प्रतिषेध के गुणों का मिश्रण होता है क्योंकि इसके अनुसार कुछ करने के लिए और कुछ न करने की आज्ञाएं दी जाती हैं।

(5) **अधिकार पृच्छा** (The Writ of Quo-warranto)—अधिकार पृच्छा लेख द्वारा कोई व्यक्ति यदि गैर-कानूनी रूप से किसी पद या अधिकार का प्रयोग करता है तो न्यायालय उसे ऐसा करने से रोक सकते हैं।

न्यायिक नियन्त्रण की सीमाएं (Limitations of Judicial Control)

भारतीय सन्दर्भ में लोक प्रशासन पर यह न्यायिक नियन्त्रण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अधिकारों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण उपाय है, किन्तु फिर भी इसकी अत्यधिक मात्रा प्रशासन को अपाहिज बना देती है, इसके अतिरिक्त न्यायिक प्रक्रिया एक खर्चीली प्रक्रिया है। यह न्यायिक प्रक्रिया तभी काम देती है जबकि कोई व्यक्ति न्यायिक कार्यवाही की मुसीबत और अपना खर्चा उठाने के लिए तैयार हो, क्योंकि न्यायालय स्वयं कार्यवाही नहीं करते। न्यायिक नियन्त्रण महंगा होने के साथ-साथ पर्याप्त समय भी लेता है। अतः कानूनी प्रक्रिया को पर्याप्त सरल बनाने की आवश्यकता है। कुछ देशों ने 'न्यायिक समीक्षा' के दोषों को दूर करने और सरकारी अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता और अवैध कार्यों से नागरिकों की रक्षा करने के लिए प्रशासनिक कानून तथा प्रशासनिक न्यायालयों (Administrative Law & Administrative Courts) का विकास किया है।

निष्कर्ष—इतने सारे नियन्त्रण के बावजूद भी आज यह कहना उचित नहीं है कि हमारा प्रशासन लोकतान्त्रिक, उत्तरदायी और जनोभिमुख है। आज भी प्रशासन की शैली निरंकुश और गैर-जिम्मेदाराना पायी जाती है। जहां तक पक्षपात, बेईमानी और घूसखोरी का सवाल है, भारत में लोक सेवाएं बहुत बदनाम हैं।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन पर नियन्त्रण के न्यायिक साधन बताइए।
2. भारतीय प्रशासन पर संसद किस प्रकार नियन्त्रण रखती है?
3. भारत में प्रशासन पर नियन्त्रण के साधनों का परीक्षण कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. लोक प्रशासन पर कार्यपालिका कैसे नियन्त्रण रखती है?

उत्तर—लोक प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण के साथ-साथ कार्यपालिका (मन्त्रिमण्डल) भी नियन्त्रण रखती है। कार्यपालिका द्वारा नियन्त्रण स्थापित करने के प्रमुख उपकरण हैं—(1) प्रशासन की नीतियां कार्यपालिका द्वारा निर्धारित होती हैं। (2) प्रशासकों की नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं निष्कासन कार्यपालिका द्वारा ही किया जाता है। (3) बजट कार्यपालिका बनाती है। (4) अनुशासनात्मक कार्यवाही भी कार्यपालिका ही करती है।

प्रश्न 2. लोक प्रशासन पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए न्यायपालिका द्वारा कौन-कौन-से लेख जारी किए जाते हैं?

उत्तर—प्रशासन को नियन्त्रित करने की दृष्टि से न्यायपालिका निम्नांकित लेख जारी कर सकती है—(1) **बन्दी प्रत्यक्षीकरण**—इसका उद्देश्य गैर-कानूनी रूप से बन्दी बनाए गए व्यक्ति को स्वतन्त्र करना होता है। (2) **परमादेश**—इस लेख द्वारा न्यायालय सरकारी अधिकारी को किसी-न-किसी प्रकार से कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है।